कुसुम

प्रेमचंद

कुसुम

प्रेमचंद

साल-भर की बात है, एक दिन शाम को हवा खाने जा रहा था कि महाशय नवीन से मुलाक़ात हो गयी। मेरे पुराने दोस्त हैं, बड़े बेतकल्लुफ़ और मनचले। आगरे में मकान है, अच्छे कवि हैं। उनके कवि-समाज में कई बार शरीक हो चुका हूँ। ऐसा कविता का उपासक मैंने नहीं देखा। पेशा तो वकालत; पर डूबे रहते हैं काव्य-चिंतन में। आदमी ज़हीन हैं, मुक़दमा सामने आया और उसकी तह तक पहुँच गये; इसलिए कभी-कभी मुक़दमे मिल जाते हैं,लेकिन कचहरी के बाहर अदालत या मुक़दमे की चर्चा उनके लिए निषिद्ध है। अदालत की चारदीवारी के अन्दर चार-पाँच घंटे वह वकील होते हैं।

चारदीवारी के बाहर निकलते ही कवि हैं सिर से पाँव तक। जब देखिये, कवि-मण्डल जमा है, कवि-चर्चा हो रही है, रचनाएँ सुन रहे हैं। मस्त हो-होकर झूम रहे हैं, और अपनी रचना सुनाते समय तो उन पर एक तल्लीनता-सी छा जाती है। कण्ठ स्वर भी इतना मधुर है कि उनके पद बाण की तरह सीधे कलेजे में उतर जाते हैं। अध्यात्म में माधुर्य की सृष्टि करना, निर्गुण में सगुण की बहार दिखाना उनकी रचनाओं की विशेषता है। वह जब लखनऊ आते हैं, मुझे पहले सूचना दे दिया करते हैं। आज उन्हें अनायास लखनऊ में देखकर मुझे आश्चर्य हुआ आप यहाँ कैसे ? कुशल तो है ? मुझे आने की सूचना तक न दी। बोले भाईजान, एक जंजाल में फँस गया हूँ। आपको सूचित करने का समय न था। फिर आपके घर को मैं अपना घर समझता हूँ। इस तकल्लुफ़ की क्या ज़रूरत है कि आप मेरे लिए कोई विशेष प्रबन्ध करें। मैं एक ज़रूरी मुआमले में आपको कष्ट देने आया हूँ। इस वक्त की सैर को स्थगित कीजिए और चलकर मेरी विपत्ति-कथा सुनिये।

मैंने घबड़ाकर कहा आपने तो मुझे चिन्ता में डाल दिया। आप और विपत्ति-कथा ! मेरे तो प्राण सूखे जाते हैं।

'घर चलिए, चित्त शान्त हो तो सुनाऊँ !'

'बाल-बच्चे तो अच्छी तरह हैं ?'

'हाँ, सब अच्छी तरह हैं। वैसी कोई बात नहीं है !'